भाद्र शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक - ३०-८-१९७१
गाथा-११०, प्रवचन-१०९

आज दसलक्षणी पर्व का पाँचवाँ दिन है। उत्तम सत्य, पाँचवाँ धर्म है। क्रोध, मान, माया, लोभरहित... ऐसा .... बताया न उत्तम क्षमा, मार्दव, सरलता और शौच। पाँचवाँ (धर्म) सत्य है।

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो॥३९८॥

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

जो मुनि, जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं... सर्वज्ञ परमात्मा ने जो कही वीतराग वाणी, ऐसा (मुनि) कहे, अपनी कल्पना से कहे नहीं। जिन-अनुसारी—सर्वज्ञ अनुसारी वाणी, उस वाणी के अनुसार ही वे कहें। '**तं पालेदुं असक्कमाणो**' कदाचित् अपनी क्रिया—आचरण पालने की शक्ति से असमर्थ हों, तो भी '**ववहारेण वि अलियं ण वददि**' अन्यथा न कहे। मार्ग तो भगवान का ऐसा है, भाई! मुनि तो २८ मूलगुण (सहित) जंगल में रहते हैं, आत्मा के आनन्द में रहनेवाले हैं। पंचम काल हो तो वहाँ ढीलापना है, ऐसा नहीं। ऐसी बात है। असमर्थ हो तो भी अन्यथा न कहे। इतनी तो ठीक, व्यवहार से भी अधिक, असत्य न कहे। व्यवहार में बोलचाल में भी अपना अपमान हो जाये, ऐसी भाषा न कहे—ऐसा नहीं। सत्य कहे। मार्ग तो भगवान का ऐसा है, भाई! अपना शुद्ध आत्म परमभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। वीतरागमार्ग में दूसरी कोई चीज़ है नहीं। और अपने स्वरूप की लीनता, आनन्द में रमणता, वह चारित्र है, ऐसी बात अपने से न पल सके तो भी अन्यथा न कहे। वह मुनि सत्यवादी—उत्तम सत्यधर्म करनेवाला—पालनेवाला कहा जाता है।

व्यवहार जो भोजन आदि का व्यापार... आहारादि है न मुनि को, उसमें ऐसा न कहे (कि) पंचम काल ऐसा है तो कोई थोड़ा उद्देशिक भी चलता है। मुनि को कोई

बाधा—दिक्कत नहीं, ऐसा नहीं कहे। उसके लिये बनाया हो और ले लेवे। दूसरा क्या उपाय है? पंचम काल के साधु होकर मर जाना? यह शरीर से मर जाना? उसमें सेठिया भी कहे कि क्या मार डालना है साधु को? कुछ बनाना, बनाकर देना। सेठ! शहर में आये तो क्या करे? ऐसा कहते हैं, देखो! सेठ सामने—प्रमुख कहने में आता है। गाँव में आवे और खबर पड़े तो उसे कुछ करना पड़े या नहीं? ऐसा मार्ग भगवान का है नहीं। समझ में आया? भोजन आदि का व्यवहार हो, पूजा, प्रभावनादि का व्यवहार जिनसूत्र के अनुसार वचन कहे। अपनी इच्छा से जैसे-तैसे न कहे। उसका नाम सत्यधर्म है। वीतरागमार्ग... आगे आया न उसमें। तुझसे न पल सके तो भी श्रद्धा तो पक्की रखना कि मार्ग तो यह है। समझ में आया?

'**दंसणभट्ठा न सिजंति**' यदि श्रद्धा विपरीत करेगा तो कभी तेरा किनारा नहीं आयेगा। '**चरितभट्ठा**' चारित्र में भ्रष्ट हो, चारित्र न हो, परन्तु श्रद्धा में पक्का हो, दर्शनभ्रष्ट नहीं, वह मुक्ति पायेगा। चारित्रभ्रष्ट है (और) दर्शनभ्रष्ट है, वह मुक्ति नहीं पायेगा। चारित्रभ्रष्ट है, वह मुक्ति पायेगा, क्योंकि उसकी श्रद्धा में यथार्थ भान वर्तता है। समझ में आया? वह सत्यधर्म की... यह दस प्रकार की बात आती है।

अपने यहाँ ११० गाथा, नियमसार। आलुंछन का अधिकार चलता है न। आलोयण का अधिकार आ गया। दूसरा आलुंछन।

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो समभावो आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं॥११०॥

भगवान ने ऐसा देखा है, ऐसा और कहते हैं।

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥

टीकाः— यह, परमभाव के स्वरूप का कथन है। आहाहा! मुद्दे की रकम की बात है। **भव्य को...** पहले लिया न भव्य। '**भव्य को**' ऐसा पहला शब्द पड़ा है न? **पारिणामिकभावरूप स्वभाव...** आहाहा! जो भव्य जीव है, मोक्ष जाने के योग्य है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने में योग्य है, उसका जो पारिणामिकभावस्वभाव...

त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली ध्रुवभाव, त्रिकाली स्वभावभाव, उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहा जाता है। समझ में आया? एक समय की पर्याय से भी भिन्न ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा, उसका सहज द्रव्यस्वभाव—स्वरूप, द्रव्य के स्वभाव की अस्ति, वह परमपारिणामिकभाव है। पोपटभाई! ऐसी भाषा तो तुमने सुनी नहीं होगी वहाँ वाडा में। आहाहा!

भगवान आत्मा... 'भव्य को' यह बात लेना है। पारिणामिकभावरूप स्वभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, वस्तु आत्मा नित्य ऐसा उसका स्वभाव भी अविनाशी—नित्य, ज्ञान-दर्शन-आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियाँ अनन्त, वह उसका स्वभाव। यह भव्य का पारिणामिकभावरूप स्वभाव... आहाहा! **स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है।** त्रिकाली भाव, वह परमस्वभाव है। नित्यानन्दस्वभाव ध्रुव—कायमी, अविनाशी—शाश्वत् स्वभावभाव उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहा जाता है।

वह पंचम भाव... पंचम त्रिकाली भगवान महिमावन्त अपना निज त्रिकाली स्वभाव **औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** आहाहा! पुण्य-पाप का विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय से अगम्य है। और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय, उसके आश्रय से भी अगम्य है (अर्थात्) उसके आश्रय से प्रगट होता नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? नहीं समझ में आया, सेठी! क्या कहा? क्या नहीं समझ में आया? आत्मा है न! उसमें दो अंश हैं। एक वर्तमान पर्याय—अवस्था—हालत का अंश है और एक त्रिकाली अंश है। जो त्रिकाली अंश ध्रुव है... नय का विषय बताना है न! पारिणामिकभाव निश्चयनय का विषय है। एक अंश है न वह। परन्तु यह अंश कैसा? कि त्रिकाल अंश जो ध्रुवस्वभाव...

आत्मा जैसे नित्य है, वैसे उसका ज्ञानभाव, दर्शनभाव, आनन्दभाव ऐसा स्वभाव अनादि-अविनाशी है। ऐसा जो नित्य स्वभाव, उसको यहाँ पारिणामिकभाव, वस्तु की सहज स्थिति का भाव कहने में आता है। यह भाव—पंचमभाव, उदयादि चार विभावस्वभावों से अगोचर है। इसका अर्थ कि उसकी जो पर्याय—हालत—दशा में पुण्य-पाप की दशा, उपशम समकित आदि की दशा, क्षयोपशम ज्ञान की दशा, क्षायिक

समकित आदि की दशा, उसके आश्रय से वह प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? वह तो परमस्वभाव का आश्रय लेकर अवलम्बन लेता है तो भान होता है, प्राप्त होता है। आहाहा!

फिर से। भगवान आत्मा में दो प्रकार। एक व्यवहार आत्मा, एक समय की पर्याय, वह व्यवहार आत्मा। चाहे तो क्षायिक केवलज्ञान हो, क्षायिक समकित हो या राग हो या क्षयोपशमज्ञान चार ज्ञान चौदह पूर्व का हो, परन्तु वह एक समय की पर्याय, वह व्यवहार आत्मा है। उससे रहित त्रिकाल निश्चय आत्मा... वस्तु की स्थिति की खबर नहीं और धर्म हो जाये। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वर्तमान विद्यमान त्रिकालभावस्वभाव एक (समय की) पर्याय के सिवाय, राग और धर्म की पर्याय के सिवाय... 'सिवाय' कहते हैं? अलावा। जो चीज़ है नित्य अविनाशी आदि-अन्त बिना की, ऐसा परमभाव, वह चार भाव से अगम्य है अर्थात् चार भाव के आश्रय से वह प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पहले बहुत बात आ गयी है।

यह तो परम भगवान आत्मा क्षयोपशम समकित, उपशम समकित, क्षायिक समकित के गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बहुत! भगवान नित्यानन्द परमात्मा 'अप्पा सो परमप्पा' ऐसा जो आत्मा त्रिकाली परमभाव, सदृशभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, द्रव्य की अस्ति का त्रिकाली भाव। आहाहा! उसे यहाँ परमपारिणामिकभाव कहने में आया है। वह भाव अपने आश्रय से प्रगट होता है। चार भाव के आश्रय से भी प्रगट नहीं होता। आहाहा! कहो, सेठी! क्या हुआ अब? चार विभावस्वभाव... त्रिकाली भाव, वह स्वभावभाव है और जो पर्याय का भाव, वह विभाव-स्वभाव है। पर्याय है न। वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाली। ज्ञान, आनन्दादि गुण जो सदृश ध्रुव, वह त्रिकाली स्वभावभाव, वह स्वभावभाव, वह पारिणामिकभाव और एक समय की पर्याय, वह विभावभाव। चाहे तो राग हो या चाहे तो क्षायिकसमकित हो—सबको यहाँ विभावस्वभाव कहने में आया है। आहाहा! जिसमें कर्म के निमित्त की उपस्थिति का भाव है, वह विकार और कर्म की उपस्थिति का अनुदय अथवा अभाव का भाव है (अर्थात्) जिसमें कर्म की निमित्तता और निमित्त का अभाव, ऐसे अपेक्षित जो चार भाव हैं, उसको यहाँ विभावस्वभाव कहा गया है। समझ में आया?

५०वीं गाथा में चार विभावस्वभाव को परद्रव्य कहा है। अपना त्रिकाली द्रव्य

नहीं। परम भगवान पूर्णानन्द प्रभु जो अनुभूति का विषय है, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह सम्यग्ज्ञान—ज्ञान में आश्रय करनेयोग्य चीज़ है, आहाहा! गजब बातें, भाई! यह तो चार विभावस्वभाव से अगम्य है। वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव ऐसा कहा। जो त्रिकाली भाव, वह स्वभाव और चार भाव, वह विभाव। आहाहा! चार भाव के आश्रय से वह प्राप्त नहीं होता, इस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य कहा जाता है। बाकी तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय से ही गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं, इसलिए उससे अगम्य कहा गया है। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? वास्तव में आत्मा, भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर जिनेश्वर ने जो वास्तव में आत्मा देखा, वह ध्रुवस्वरूप है, वह परमपारिणामिकभाव है। ऐसा देखनेवाले को अपना स्वभाव का आश्रय लेता है तो देखने में आता है। पर्याय का आश्रय लेने से देखने में नहीं आता। पर्याय के आश्रय से विकल्प उठते हैं। समझ में आया?

इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम... लो, ऐसा लिया। देखो! उदय-उदीरणा ऐसे विविध विकारों से रहित है। उसमें पहले चार विभाव कहे समुच्चय। पश्चात्, त्रिकाली भाव उदय से भी रहित, उदीरणा से भी रहित है। उदीरणा करना, पुरुषार्थ करके राग को टालना, यह उदीरणा-फुदीरणा वस्तु में है नहीं। आहाहा! अन्तर में पुरुषार्थ करके राग का नाश करना, कर्म का नाश करना, ऐसी जो उदीरणा, वह भी विविध विकार है—विशेष अवस्था है। उससे भी भगवान ध्रुव प्रभु तो रहित है। आहाहा! समझ में आया? **उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम...** उदीरणा डाला उसमें। उपशम उसमें रखा और यहाँ उदीरणा डाला। ... चार भाव। समझ में आया? उपशम के बदले उदीरणा डाला। क्यों? कि पुरुषार्थ से उदीरणा (अर्थात्) नाश होता है कर्म का और राग का। यह दशा तो वर्तमान पर्याय की विशेष आकृतिवाली दशा है। गुण का विशेष (कार्य)—विकार है। उससे त्रिकाली रहित है। आहाहा! नहीं पकड़ में आया? वह की वह बात आयी।

पर्याय में जो भाव आया, वह गुण का विकार है। विकार का अर्थ गुण का विशेष कार्य है। चाहे तो क्षयोपशम हो या क्षायिक हो, परन्तु गुण का विशेष कार्य है। तो विशेष

कार्यरूपी जो भेद, उससे वह रहित है। पर्याय है न! आता है न जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में? पर्याय किसको कहते हैं? गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। आता है न प्रेमचन्दजी? क्या आता है? गुण के विशेष कार्य को परिणाम कहते हैं, पर्याय कहते हैं। कहते हैं कि रागादिभाव या राग का नाश करने का उदीरणाभाव, क्षयभाव या क्षयोपशमभाव—ऐसे विविध—अनेक प्रकार की विकार अर्थात् विशेष दशा से रहित है। आहाहा! शरीर रहित तो है ही, वह तो मिट्टी-जड़ है। तत्त्व क्या है उसकी खबर नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी का कहा हुआ आत्मा वह सम्यग्दृष्टि को गम्य है, परन्तु गम्य है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया?

वर्तमान चलती पर्याय निर्मल अवस्था भी त्रिकाली में नहीं, धर्म की पर्याय भी त्रिकाली में नहीं। धर्म की पर्याय से रहित पारिणामिकभाव है। आहाहा! निश्चय मोक्ष का मार्ग जो है, अपना भगवान पूर्णस्वरूप उसकी श्रद्धा—निर्विकल्प समकित, उसका ज्ञान—राग बिना का स्वसंवेदनज्ञान और चारित्र—स्वरूप की रमणता, ऐसा जो निश्चय मोक्षमार्ग है, उस पर्याय से भी रहित द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर की क्रिया से रहित मानने में पसीना उतरता है। पाटनीजी! जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं? खानियाचर्चा जयपुर... जयपुर हुई न? तुम्हारे सामने हुई है। तुम थे या नहीं उपस्थित? हाँ, वह। वह प्रश्न था। जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं? हमारे राजमलजी कहते हैं कि ऐसा प्रश्न क्या करते हैं? ऐसे प्रश्न अभी जैन में चले! पाटनीजी! तुम उपस्थित थे या नहीं? आहाहा! फूलचन्दजी। फूलचन्दजी न? थे न, वहाँ सब उतरे थे न? आहाहा!

कहते हैं, अरे भगवान! तेरी सत्य चीज़ जो नित्यानन्द प्रभु... तुम अविनाशी हो या नाशवान हो? पर्याय नाशवान है। पर्याय नाशवान है। परन्तु त्रिकाली चीज़ नाशवान है? आहाहा! ऐसा त्रिकाली अविनाशी प्रभु जो पर्याय में लक्ष्य में आता है, वह चीज़ तो त्रिकाली परमस्वभावभाव पर्याय के विविध प्रकार के भाव से रहित है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव की परम्परा के सिवाय कहीं है नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह आत्मा है, परन्तु है तो किस प्रकार से है? क्या

पर्याय से वह आत्मा त्रिकाली है ? क्या पर्याय है तो त्रिकाली आत्मा है ? त्रिकाली भी है और पर्याय भी है। परन्तु वह पर्याय से रहित द्रव्य है, नहीं तो द्रव्य सिद्ध होता नहीं। कार्य करना है जिस दशा में, कार्य, उस कार्य से कारण त्रिकाली भिन्न है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अखण्ड अभेद वस्तु एक आत्मा, हों! सब मिलकर नहीं। प्रत्येक आत्मा अपनी अखण्डता, अभेदता भिन्न रखता है। पर से तो भिन्न रखता है, परन्तु अपनी पर्याय से अखण्डता, अभेदता, द्रव्यता भिन्न रखता है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **ऐसे विविध विकारों से रहित है। इस कारण से इस एक को परमपना है,...** परमपना तो, त्रिकाली ध्रुवपने को ही परमपना है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो विकारी पर्याय और अविकारी पर्याय, अधर्म पर्याय और धर्म पर्याय है—उसकी अपेक्षा से वह त्रिकाली भाव परमभाव है (और) चार अपरमभाव हैं। आहाहा! समझ में आया ? अपरमभाव में स्थित, उसे व्यवहार का उपदेश है, यह दूसरी बात है। (समयसार) १२वीं गाथा में आता है न! उसका उल्टा अर्थ करते हैं। वह तो कहते हैं, जब उसको आत्मा का पूर्ण अनुभव और शुद्धनय की दशा प्रगट हो गयी, उसको तो शुद्धनय जाननेयोग्य है अर्थात् उसका ज्ञान हो गया। परन्तु जब तक वह आत्मा साधकस्वभाव में है, अपने परमस्वभाव की ओर के झुकाव में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में है, परन्तु अभी पूर्ण दशा हुई नहीं, तो निचलीदशा में अपने में जो रागादि की अपूर्ण शुद्धता है, उसको जानना, वह प्रयोजनवान है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जानना प्रयोजनवान है। उपदेश करने की बात वहाँ है ही नहीं। आहाहा! साधारण मिथ्यादृष्टि है, उसको तो व्यवहार का ही उपदेश करना, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है ही नहीं वहाँ। समझ में आया ? यह बात दूसरी, वह बात दूसरी। वहाँ तो पूर्णदशा हुई नहीं और दृष्टि के विषय में दृष्टि तो पड़ी है। निश्चय के ऊपर दृष्टि है, परन्तु पर्याय में पूर्णता की प्राप्ति न हो, तब तक अपूर्ण शुद्धता और राग को जाना हुआ प्रयोजनवान है। वह अपरमभाव में स्थित को व्यवहार का उपदेश यह है। उल्टे अर्थ करे, क्या करें ? समझ में आया ? यहाँ, क्षायिकभाव पूर्ण न हो, तो निचलीदशा में अपूर्ण भाव को

अपरमदशा कहा जाता है। वह जाननेयोग्य है ऐसा। यहाँ कहते हैं कि जो त्रिकाली परमस्वभावभाव है, वह परमभाव है और चार भाव पर्याय है, वह अपरमभाव है, बस इतना। यह परमभाव नहीं तो अपरमभाव है। आहाहा! क्या हो? क्या करे?

चार विभावों को अपरमपना है। देखो! **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** एक को परमपना है। त्रिकाली अविनाशी अंश जो ध्रुव सदृश रहनेवाला भगवान ऐसा है... है... है... है... है... अनादि, उसको परमपना है कि जो आश्रय करनेयोग्य है। और **शेष चार विभावों को अपरमपना है।** क्षायिक केवलज्ञान भी अपरमभाव है। भाई! यह यहाँ नहीं, वहाँ बात की, वह यहाँ नहीं। यहाँ थी वह वहाँ नहीं। यहाँ तो, क्षायिक केवलज्ञान भी अपरमभाव है। वहाँ अपरमभाव में स्थित है, वह केवलज्ञान में नहीं। समझ में आया? वहाँ कहा अपरमभाव अर्थात् केवलज्ञान—वह नहीं। केवलज्ञान प्रगट हो गया तो शुद्धनय की पूर्ण दशा हो गयी। बस, वह तो ज्ञाता-दृष्टा अकेला है, हो गयी पूर्णता और निचलीदशा में पूर्ण दशा का अभाव, उसका नाम अपरमभाव कहने में आया है। समझ में आया?

यहाँ त्रिकाली भाव परमभाव की अपेक्षा से चार पर्याय को अपरमभाव कहने में आता है। चार तो पूर्ण हुआ है... '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो**' परमभाव जो पूर्ण पर्याय प्रगट हो गयी, उसको भी यहाँ अपरमभाव कहने में आया है। समझ में आया? मीठाभाई! यह तो अपरमभाव का अपरमभाव है। आहाहा! विवाद उठाते हैं वापस। भाई! वास्तविक वीतरागमार्ग सर्वज्ञ ने कहा वह तत्त्व जगत का सत्त्व है। वह कोई कल्पना से या अनुमान से ऐसा है—फैसा है, एक ही आत्मा है, दूसरा है ही नहीं (ऐसा) कल्पना से सिद्ध करना, ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और वाणी में आया, उस अनुसार पदार्थ की व्यवस्था है। समझ में आया? **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** कौन एक? सेठ! त्रिकाली परमपारिणामिकस्वभाव। **शेष चार विभावों को अपरमपना है।** चाहे तो केवलज्ञान हो या अनन्त आनन्द हो, चतुष्टय चार प्रगट हुए हों, तो भी त्रिकाली परमभाव की अपेक्षा से अपरमभाव है। और वहाँ (समयसार) १२वीं गाथा में जो अपरमभाव कहा, वह केवलज्ञानादि नहीं। वहाँ अपरमभाव केवलज्ञान नहीं। समझ में आया?

वहाँ तो अपना आत्मा द्रव्यदृष्टि सम्यक् में तो द्रव्य का पूर्ण आश्रय लिया, निश्चय का आश्रय लेकर सम्यक्त्व हुआ, परन्तु अभी पर्याय में पूर्णता प्राप्त नहीं हुई तो अपूर्ण शुद्धता और राग का भाव जो पर्याय में है, उसको जाना हुआ प्रयोजनवान (कहा) है। समझ में आया? गजब! शास्त्र का अर्थ करने में बड़ी गड़बड़ हो, एक गड़बड़ी हो तो सबमें गड़बड़ी (आती है)। एक और दो = चार। फिर चार चौके सोलह, और सोलह तिया अड़तालीस और अड़तालीस दूने छियानवे। करोड़ों में चले (जाये), परन्तु वह मूल में भूल है। तो वे पाँच-पच्चीस ऐसे पृष्ठ देखे (तो कहे) कि भूल नहीं है। परन्तु मूल में भूल है। समझ में आया? एक और दो = चार हो गये हैं। फिर चार चौके सोलह और सोलह तिया अड़तालीस और अड़तालीस दूने छियानवें और छियानवे.... मूल में भूल। अपने प्रकाशित हुई है न वह पुस्तक 'मूल में भूल'। यह शब्द तो भाई ने दिया ....लाल। समझ में आया?

कहते हैं, आहाहा! क्या परन्तु टीका! आलुंछन है न! 'आ' अर्थात् समस्त प्रकार से, लुंछन—छेद डालना। मेरे द्रव्य में पर्याय नहीं। आहाहा! पर्याय अपरमभाव है; परमभाव, मेरी त्रिकाली चीज़, वह परमभाव है। उसका दृष्टिवन्त अपरमभाव का आश्रय नहीं लेता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? साधारण समाज को अभ्यास नहीं और ऊपर जो अभ्यास साधारण शब्दों का किया हो, वह दिये रखे जय महाराज! जय महाराज! मूलचन्दभाई! कमाने के कारण निवृत्ति नहीं। भाई कहते हैं कि .... चला ही ऐसा है, भाई, हों! आहाहा!

समस्त कर्म... अब अर्थ आया। यह भाव की व्याख्या की न! अब '**कम्ममहीरुह-मूलच्छेदसमत्थो**' उसकी बात आयेगी। आहाहा! गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य एक-एक शब्द में, एक-एक पद में... '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो**' यह पहला पद। अब, **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** लो, पहले व्याख्या की दो की। समझ में आया? कहते हैं, समस्त कर्मरूपी जहर के वृक्ष... आठ कर्म जहर का वृक्ष। आहाहा! अरे, भगवान! तीर्थंकरगोत्र बँधे उसे? जहर का वृक्ष है। ऐ, भीखाभाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, तीर्थंकरगोत्र प्रकृति बँधी, वह जहर का वृक्ष है। समस्त १४८ प्रकृति, हों! आहाहा! समस्त कर्मरूपी जहर का वृक्ष...

अब इतना तो प्रकृति को दृष्टान्त दिया है जहर का वृक्ष। भाव तो जहर है ही, जिस भाव से प्रकृति बँधे, वह भाव तो जहर है। षोड्शकारण भावना, वह भाव जहर है। जयन्तीलालजी! आहाहा!

यह तो दिगम्बर सन्त यह बात करें, हों! जगत की परवाह नहीं। सत्य यह है। मानो—न मानो, समझो—न समझो, परन्तु मार्ग यह है। दूसरा (मार्ग) करेगा (मानेगा) तो तेरा नाश हो जायेगा और संसार में परिभ्रमण करेगा। आहाहा! यह परमभाव कैसा है? त्रिकाली है। समस्त कर्म के जहर के वृक्ष को उखाड़ने में समर्थ। उसका अर्थ कि उसमें कर्म का जहर वृक्ष है ही नहीं। एक बात। दूसरी, उसका आश्रय करो तो आठों कर्म का नाश होगा, ऐसा वह परमभाव है। समझ में आया? आहाहा! अरे! मनुष्यदेह में आया और सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा तत्त्व प्रसिद्ध किया, सन्तों ने सरल भाषा में मार्ग सरल कर दिया है। समझ में आया? ऐसा जार्ग जो उसकी समझ में न आवे तो क्या किया? बाहर में मान मिले, दुनिया महिमा करे कि बड़ा विद्वान है, बड़ा पण्डित है। क्या है? मुझमें आया है क्या? समझ में आया?

ओहोहो! कहते हैं, तेरा जो परम पंचम भाव, वह कर्मरूपी वृक्ष को उखाड़ने में... '**आलुंछण**' है न? '**आलुंछण**'=मूल में से उखाड़कर। आहाहा! ऐसा यह परमभाव है, **उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव है,...** पाठ है न! '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो**' पहले पद की व्याख्या इतनी है। आहाहा! **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष...** क्या कहते हैं अब? कि त्रिकाल निरावरण परमात्मा अपना निजस्वरूप, परमात्मा निजस्वरूप परमस्वरूप... परम आत्मा को परम स्वरूप कहो या परमभाव कहो। समझ में आया? अपना त्रिकाली परमात्मा, एक समय की पर्याय के बिना का त्रिकाली परमात्मा, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप अथवा परमभाव। ऐसा **निरावरण निज कारणपरमात्मा...** अपना निज परमात्मा, ऐसा। अरिहन्त या भगवान का परमात्मा नहीं।

इस निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा, स्वरूप की श्रद्धा समकित। उससे विपरीत **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को,...** आहाहा! जिसकी दृष्टि

राग और एक समय की (पर्याय)—अपरमभाव पर दृष्टि पड़ी है, आहाहा! ऐसा कहते हैं। उसको त्रिकाल निरावरण की दृष्टि है नहीं। समझ में आया? ....गजब! ऐसा उपदेश कैसा? कहे, दस अपवास करना दसलक्षणी पर्व में, ऐई! यह सेठिया कहे, भाई दान देना; यह शरीर के बलवाले को अपवास करना, बुद्धिबलवाले को शास्त्र पढ़ना, यह तो कुछ आया नहीं। वक्तापने का भाव हो, उसे उपदेश देना, शरीर का बल हो उसे अपवास आदि तप करना और लक्ष्मीवाला हो, उसे दान देना। यह चीज़ है ही तुझमें, क्या दे किसको? बोले कौन? बोले वह दूसरा—जड़, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष...** उसका अर्थ क्या हुआ? कि **मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि...** कुदृष्टि... उसकी दृष्टि त्रिकाल निरावरण परमात्मा को स्वीकार न कर, एक समय की पर्याय और राग को स्वीकार करती है, वह कुदृष्टि है। आहाहा! गहन गम्भीर विषय है। आहाहा! वापस, **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** जिसकी दृष्टि में पर्याय और राग पड़ा है, उसको त्रिकाल विद्यमान होने पर भी भगवान अविद्यमान ही है।

मुमुक्षु : होते हुए भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। क्या कहा? भाई ने क्या कहा? होने पर भी नहीं है। वस्तु तो विद्यमान है न! दृष्टि पर्याय के ऊपर और राग के ऊपर है। तो विद्यमान होने पर भी उसको तो है नहीं। समझ में आया? जिसकी दृष्टि एक समय की पर्याय या विकल्प—व्यवहार राग की मन्दता आदि पर दृष्टि है, वह कुदृष्टि है। तो कुदृष्टि में विद्यमान पर्याय और राग दिखते हैं। उस कुदृष्टि को परमस्वभाव होने पर भी—विद्यमान होने पर भी, उसको तो अविद्यमान है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में आवे, उसको विद्यमान है। दृष्टि में आवे नहीं, उसको क्या है? आहाहा! समझ में आया?

कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है... परम अविनाशी त्रिकाल ध्रुवस्वभाव... दृष्टि में 'यह है' ऐसी तो मान्यता है नहीं। उसकी दृष्टि में तो पर्याय और राग है, ऐसी मान्यता है। आहाहा! तो त्रिकाल भगवान विराजता होने

पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है। सेठ! समझ में आया? निश्चय से, **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** भगवान ध्रुव तो त्रिकाल सदा—नित्य विद्यमान है। कब नहीं है? त्रिकाल है, त्रिकाल है। ऐसे **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है (कारण कि मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है)।** आहाहा! बस, मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं एक समय की पर्याय जितना हूँ, एक समय की पर्याय जितना हूँ। (ऐसे) मिथ्यादृष्टि को विद्यमान होने पर भी अविद्यमान है। नजर में तो पड़ता नहीं, नजर करता नहीं। आहाहा!

ऐसी चीज़ अभी सुनने में न मिले, (वह) कब उसका जानपना करे, कब उसकी रुचि करे, कब उसका—द्रव्य का आश्रय करे? आहाहा! इसके बिना सब मिथ्या थोथा है। सम्यग्दर्शन का आश्रय परमपारिणामिकभाव है, इसके आश्रय बिना कुछ भी किया जाये—क्रिया, व्रत, नियम और तप—सब रण में शोर है। वह अरुण्यरुदन है। सेठ! ऐसा सुननेवाला तैयार नहीं था। आहाहा! क्या सन्तों ने मार्ग को सादी भाषा में... सादी भाषा में सरल... सरल कर दिया है। समझ में आया? पर्यायदृष्टि और द्रव्यदृष्टि का कितना स्पष्ट कथन! जिसकी पर्यायदृष्टि है, उसको द्रव्य विद्यमान होने पर भी नहीं है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है।** श्रद्धा में आया, तब परमभाव विद्यमान है, (ऐसा) उसको ख्याल आया। वह तो त्रिकाली चीज़ है। वह त्रिकाली है। नया हुआ है, मैं नये की श्रद्धा करता हूँ—ऐसा कुछ नहीं है। मैं श्रद्धा करनेवाली पर्याय नयी हूँ, परन्तु वह चीज़ नयी नहीं है। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! श्रद्धा हुई तो सब हो गया? पश्चात् चारित्र बिना मुक्ति होगी? परन्तु सुन तो सही! चारित्र देवलोक में नहीं, मनुष्यपने में है, इसलिए चारित्र ले लो। परन्तु किसका चारित्र? कहाँ से ले लेना? बाहर मिलता है कहीं? पंच महाव्रत का विकल्प लिया, वह चारित्र हो गया? समझ में आया? नग्नपना हुआ, वह चारित्र हो गया? अभी तो पहले त्रिकाली भगवान परमानन्द ऐसा आश्रय करके निर्विकल्प अनुभव न हो, तब तक उसको सम्यग्ज्ञान भी नहीं तो चारित्र तो कहाँ से आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

एक व्यक्ति कहता था वहाँ ललितपुर में। एक पण्डित था। हरिचन्द... गुजर गये

हरिचन्द ललितपुर में। यह बात तुम्हारी ऐसी है कि कोई एकाध व्यक्ति समझे तो। परन्तु सच्ची है या नहीं? अब एकाध समझे—न समझे, क्या काम है यहाँ? ऐई! एक पण्डित था। रामजीभाई थे वहाँ। वे खड़े होकर बोले थे खलबलाहट करने को। रात्रिचर्चा के बाद, हों! तुम्हारी बात तो कोई एकाध समझे... एकाध समझे—न समझे, यह बात नहीं, बात (मार्ग) यह सत्य है। समझ में आया? क्या असत्य मार्ग से तुम्हें लाभ होगा? उन्हें तो ऐसा कि ऐसा हमको तो कुछ खबर नहीं और तुमने ऐसा निकाला? वह पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े तो भी हमने ऐसा तो निकाला नहीं था। तुम्हारी यह बात बैठे किसे? सच्ची है या नहीं, यह बात कर न? बैठे—न बैठे, वह तेरे घर रही।

मुमुक्षु : स्वयं को बैठती नहीं इसलिए दूसरे को....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात यह। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो दो बातें कीं। परमभाव—त्रिकालीभाव। अपरमभाव—वर्तमान पर्याय का चार भाव। उसको विविध विकार कहा, तो त्रिकाली को अविकारी एकरूप कहा। और अपरमभाव के आश्रय से परमभाव मिलता नहीं, यह कहा। परमभाव के आश्रय से परमभाव की प्राप्ति होती है और परमभाव विद्यमान होने पर भी, जिसकी दृष्टि परमभाव पर नहीं है और जिसकी दृष्टि में बाह्य—एक समय का तत्त्व, वह भी बाह्यतत्त्व है। वह आ गया है ३८ गाथा में। एक समय की पर्याय बाह्यतत्त्व है और त्रिकाली भगवान आत्मा अन्तःतत्त्व है। समझ में आया? ऐसे बाह्यतत्त्व पर जिसकी दृष्टि है, एक समय का आत्मा—पर्याय के ऊपर दृष्टि है, उसको अन्तःतत्त्व विद्यमान होने पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है। आहाहा! समझ में आया?

परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! नित्य ध्रुव पर अपनी पर्याय को झुकायी नहीं तो विद्यमान है, वह उसकी प्रतीति में आया नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' श्रीमद् में आता है न यह? 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख... करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर जिनवरदेव का कहा हुआ यह मूल मार्ग सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **नित्यनिगोद के जीवों को भी...** नित्य निगोद है न! (जो) कभी त्रस हुआ नहीं, कभी एकेन्द्रिय पृथ्वी आदि हुआ नहीं, ऐसे नित्य निगोद के जीव अनन्त हैं। विद्यमान भगवान अनन्त निगोद के जीव नित्य निगोद में से, इतना-इतना अनन्त काल अभी हुआ, (फिर भी कभी) उसमें से एकेन्द्रिय पृथ्वी नहीं हुआ, प्रत्येक पृथ्वी नहीं हुआ। ऐसे पड़े हैं। ओहोहो! **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से...** उसका स्वभाव देखो तो **वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** वह प्रगट होनेयोग्य नहीं है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। अभव्य को तो परमस्वभावभाव है सही, प्रगट होनेयोग्य नहीं है। समझ में आया?

अभव्यत्वपारिणामिकभाव ऐसे नामसहित नहीं है। अभव्य का पारिणामिकभाव कभी व्यवहारयोग्य होता नहीं। ऐसा (इसे) नहीं है। समझ में आया? गजब! ऐसा शास्त्र और ऐसी सूक्ष्म अटपटी बातें, लो। नित्य निगोद। सिद्ध जीव से अनन्तगुने जीव, जो एकबार कभी एकेन्द्रिय हुआ नहीं। प्रत्येक... उसी और उसी में पड़े हैं। समझ में आया? उसका जीव का स्वभाव भी शुद्ध है, परमभाव पड़ा ही है। **'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है (परन्तु शुद्धरूप से ही है)।** आहाहा! अभव्य को तो पर्याय में प्रगट नहीं होगा। यह तो कोई निकले तो प्रगट योग्य है, ऐसा कहते हैं। हाँ, निकलता है न। नित्यनिगोद में से निकलते हैं। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव मोक्ष) जाते हैं, इतने निगोद में से निकलते हैं। आहाहा! इसकी विशेष बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)